HindiTech
A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

मेलघाट क्षेत्र की कोरकू लोक-संस्कृति

महेंद्र कुमार जायसवाल

mahendrajaiswal712@gmail.com

शोधार्थी, मानवविज्ञान विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

शोध सार

मानव प्रारंभ से ही प्रकृति को अनेक रूपों में देखता एवं समझता आ रहा है और वह प्राकृतिक घटनाओं के रूप में पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, नदी, पहाड़, वर्षा के बहते हुए पानी, आकाश आदि को देखकर इनसे विविध रूपों में जुड़ता रहा है। उसमें निर्माण की, सोचने विचारने की तथा जीवन के नवीन तरीकों को ढूँढ निकालने की अपूर्व क्षमता रही है। उसने प्रथा, रीति-रिवाज, परंपरा, साहित्य, कला, धर्म और चिकित्सा आदि को विकसित किया है और वह स्वयं संस्कृति का निर्माता रहा है। उसने अपनी बौद्धिक क्षमता से जीवन को अनेक रूपों में संगठित किया है और साथ ही प्रकृति को नियंत्रित कर अपने उपयोग में लाने का प्रयत्न भी किया है। इनके दैनिक जीवन के कई वस्तुएँ, जिनका वे स्वयं खोजकर्ता है जैसे कि प्राचीन उपचार व देशज ज्ञान तकनीकी, कृषि के तौर-तरीके, कृषि उपकरण, पत्तल की छतरी, ओखली, रस्सी की टोकरी, तुंबा का बोतल, गोफनी एवं विभिन्न प्रकार के शिकार के फंदे, तीर-धनुष और वाद्ययंत्र आदि है। कोरकू जनजातीय समुदाय को उनकी सांस्कृतिक जीवन-शैली से ही पहचानी जाती है। इस समुदाय का क्रिया-कलाप, रहन-सहन, भाषा, गीत-संगीत, लोक उपचार व देशज ज्ञान आदि सदियों पुरानी है। इसी प्रकार जंगलों के नाम, झरना, वन एवं पशुओं और पक्षियों से जुड़ी पारंपरिक गीत, नातेदारी का महत्त्व एवं गोत्र व टोटम आधारित सामुदायिक संबंधों की भूमिका आदि जनजाति संस्कृति को समृद्ध बनाती है।

बीज शब्द- कोरकू जनजाति, मेलघाट क्षेत्र, धार्मिक विश्वास, लोक नृत्य, लोक संस्कृति, मान्यताएँ

कोरकू जनजाति की भू-पारिस्थितिकी

मेलघाट के जंगलों में मुख्य रूप से कोरकू जनजातियों का निवास है, जो जंगलों के आस-पास के क्षेत्र में एक स्थाई जीवन जीने का सबसे अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते है। उन्हें इन वनों से अपनेपन की अटूट भावना है और इसीलिए इसने अभी भी अपनी शांति बनाए रखी है, जबकि अन्य आस-पास के वन क्षेत्र तेजी से अपने गौरव के दिन खो रहे हैं। कोरकू, निहाल, पारधी, गवली (स्थानांतरित पशुपालक), भिलाला (टट्टया भील), ठाटीया गोंड (गौ रक्षक), राजगोंड जनजाति के पास अपना खुद का देशज़ या स्वदेशी वैज्ञानिक वानस्पतिक एवं लोक चिकित्सीय ज्ञान है, जो आधुनिक वैज्ञानिकों को कुछ चीजें सीखा सकता है। मेलघाट में निवास करने वाली जनजातीय आबादी के पास बहुत ही विविध और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है, जिसका आस-पास के जंगलों के वनस्पतियों और जीवों के साथ सह-अस्तित्व बना के रखा गया है।

कोरकू जनजाति के गोत्रों का नाम पेड़ों के नाम पर रखा गया है, जैसे जामुनकर, सेमलकर आदि जो प्रकृति के साथ अपनी संस्कृति के एकीकरण को सिद्ध करते हैं। भारत की जनसंख्या में चार विभिन्न मानव जातियों के लोग हैं, जैसे आस्ट्रिक, द्रविड़, मंगोल और नीग्रो। इन चारों में आस्ट्रिक सबसे पुराने बताए जाते हैं। आस्ट्रिक वंश के लोग ही कोरकू जनजाति हैं। कोरकुओं की उत्पत्ति के बारे में कोई ठोस प्रमाण तो नहीं है, और न ही इनका कोई लिखित इतिहास मिलता है, यानि केवल इनके पूर्वजों द्वारा कही गई मौखिक व पौराणिक गाथाओं से ही जानकारी मालूम होती है कि इनकी सृष्टि कैसे हुई? वैसे तो कोरकू अपने आपको रावण का वंशज और महादेव को अपनी सृष्टि के रचयिता मानते हैं, क्योंकि इनकी इस मान्यता के पीछे इनकी दैवीय उत्पत्ति की एक विस्मयकारक गाथा है, जो इनके प्राचीन इतिहास के बारे में बताता हैं। साँवलीगढ़ (जिला बैतूल) या भंवरगढ़ को अपनी उत्पत्ति स्थल मानते हैं। आदिवासी कोरकू समाज

मेलघाट क्षेत्र के कोरकू मचान गृह

भौगोलिक रूप से महाराष्ट्र (अमरावती, अकोला, गढ़चिरोली, नांदुरा) मध्यप्रदेश (बैतूल, खंडवा, छिंदवाड़ा, होशंगाबाद, बुरहानपुर, नेपानागर, हरदा, देवास, खातेगांव, पंचमढ़ी, पिपरिया) असम, छत्तीसगढ़, झारखण्ड में मुख्य रूप से पायी जाती है। कोरकू समाज की उपजातियाँ रुमा, भोंडिया, पोतरिया, निहाल, नहाल, मवासी इत्यादि है, जो की सभी जातियाँ में मुख्य रूप से भाषा और रीति-रिवाज़, परंपरा के आधार पर समानता पाई जाती है। कोरकू समाज में उपनाम गोत्र में एकरूपता नहीं है, एक ही गोत्र को भिन्न-भिन्न उपनामों के रूप में लिखा जा रहा है। कोरकू मुंडा आदिवासी का हिस्सा है, जो मुंडारी कोरकू बोली बोलते है। कोरकु, मुंडा, हो, उरांव एवं संथाली भाषाओं में कुछ समानता पायी जाती है, क्योंकि ये सभी जनजातियां आनुवांशिक रूप से ऑस्ट्रो-एशियाई मुंडा परिवार से संबंधित है। कोरकू शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- 'कोर' और 'कू' जिसमें कोर शब्द से तात्पर्य 'आदमी' होता है और कू शब्द से तात्पर्य 'समूह' होता है। अर्थात् आदमियों या मनुष्यों के समूह से है। इस प्रकार किसी मानव समूह को कोरकू कहकर संबोधित किया जाता हैं। यह जनजाति कोरकू भाषा बोलती है, जिसका संबंध मुंडा भाषाई समूह से है और इसकी लिपि देवनागरी है। डॉ. नारायण चौरे का कहना है कि "कोरकू जनजाति की चार उप-शाखाएँ है। पहली राजकोरकू, दूसरी मवासी कोरकू, तीसरी बंडोडिया कोरकू, और चौथी रोमा कोरकू है। इनमें राजकोरकू पूर्व निमाड़ जिले में और अन्य अमरावती जिले के मेलघाट टाइगर रिज़र्व क्षेत्र (धारणी एवं चिखलदरा) के तालुका में, बुलढाणा, होशंगाबाद, बैतूल, हरदा आदि जिलों में निवास करती है।"

नृत्य, गीत, मान्यताएँ एवं अनुष्ठान

कोरकू में एक भी पर्व-त्योहार, अनुष्ठान और माँगलिक कार्य ऐसा नहीं है, जिसमें नृत्य न होते हों। बिना नृत्यों के इनका कोई वजूद भी नहीं है, क्योंकि कोरकू नृत्य मूलतः अपनी आत्मा के आनंद की अभिव्यक्ति है। इनके लोक में नृत्य दिखावे की वस्तु नहीं, बल्कि वह परंपरा का एक अटूट हिस्सा होता है। वे किसी न किसी परंपरा, रीति-रिवाज, धार्मिक अनुष्ठान क्रिया, पर्व-त्योहार आदि से जुड़े होते है। कोरकू जनजातियों की परंपरा में नृत्य, गीत और संगीत का बड़ा महत्त्व है। इससे उनका उल्लास प्रकट होता है। प्रत्येक जनजाति के अपने-अपने स्थानीय नृत्य, गीत व संगीत होते हैं, जो किसी विशेष अवसरों पर ही किए जाते हैं।

कोरकू धार्मिक अनुष्ठान कृत्य

जंगलों में स्वच्छंद फुदकते पक्षी जिन्हें नृत्य करने की प्रेरणा देते हैं। नदी, पहाड़, पेड़-पौधों, पशु-पक्षी, जीव-जंतुओं से कोरकुओं का संबंध बहुत गहरा है। कोरकू अपने गीतों में सबसे पहले धरती माँ जो अन्न देती है, जंगल और पहाड़ को कृतज्ञता प्रकट करना नहीं भूलते हैं।

गदली-सुसुन नृत्य:- गदली-सुसुन एक माँगलिक नृत्य है, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों इसमें सहभागी होते हैं। कोरकू जनजाति में पुरुषों के द्वारा नृत्य करने की क्रिया को 'सुसुन' और स्त्री द्वारा नृत्य करने की क्रिया को 'गदली' कहा जाता है। कोरकू जनजाति में कोई भी नृत्य एकल नहीं होता है, क्योंकि सारे नृत्य सामूहिक ही होते हैं। आमतौर पर नृत्य युवाओं के द्वारा ही किए जाते हैं। केवल धार्मिक अनुष्ठानों और पर्वों पर ही प्रौढ़ लोग भाग लेते हैं, जैसे होली एवं देव दशहरा पर्व आदि। यह विशेष नृत्य कोरकू परंपरा के अनुसार हर कार्यक्रम में, शादी-विवाहों, उत्सवों, त्योहारों जैसे होलीपूजा, पोला, माह गोमेज पूजा इत्यादि में पूरा गाँव उत्साह के साथ समूह में महिला व पुरुष नृत्य, ढ़ोल, बाँसुरी की धुन पर अलग-अलग मुद्राओं में करते हैं। इस नृत्य की बड़ी विशेषता यह है कि इसमें किसी भी प्रकार का गीत नहीं गाया जाता है। यह नृत्य स्पर्श धुन की भाषा में संपूर्ण होता है। नृत्य में दो पुरुष ढोलक व दो बाँसुरी (*पावी*) बजाते हैं और स्त्रियाँ चिट्कोरी नामक वाद्ययंत्र बजाती हैं, जिसमें घुंघुरू जड़े होते हैं। कोरकू जनजाति का कोई भी माँगलिक कार्य इस नृत्य के बिना पूर्ण नहीं माना जाता है। इस नृत्य में महिलाएँ सुर्ख लाल रंग या गहरे हरे रंग का लुगड़ा और पुरुष अपना पारंपरिक परिधान सफ़ेद धोती-कमीज पहनता है।

गदली-सुसुन नृत्य

होरोरिया नृत्य एवं होरयार गीत:- होरोरिया नृत्य पोला त्योहार से प्रारंभ होकर क्वार माह तक किया जाता है। यह नृत्य अन्य सभी नृत्यों के समान रात को ही किया जाता है। पुरुषों के इस नृत्य में 11 से लेकर 22 तक की संख्या में नर्तक भाग लेते हैं। अपनी मध्यम धीमी गति के कारण इस नृत्य में प्रौढ़ और वृद्ध पुरुष भी भाग लेते हैं। इस नृत्य में पुरुष हाथ में डंडे थामे होते हैं। वे इन डंडों को जमीन पर ठोक-ठोककर नृत्य करते हैं। इन डंडों में किसी में घुंघुरू तो

किसी में पशुओं के गले में बंधने वाले 'टापुर-ढोनी' घंटी बंधे होते हैं। डंडों को जमीन पर ठोंकने से मधुर ध्वनियाँ निकलती हैं। यह नृत्य दो भागों में बंटकर पंक्तिबद्ध किया जाता है। यह नृत्य होली जलाने के बाद लोग घर वापसी के वक्त गाँव के कल्याण एवं ख़ुशहाली हेतु होरया गीत और नृत्य करते हुये मुठ्वा देव के पास जाकर घर वापसी करते हैं।

डंडा नृत्यः- कोरकू जनजाति में यह नृत्य आषाढ़-सावन (जून-जुलाई) माह में जब 'भवई पूजा' होती है, उस दिन से किया जाता है। इस दिन गाँव का 'भुमका' (पुजारी) एक जगह छोटा-सा डंडा गाड़ता है। इस स्थल के आसपास नृत्य प्रारंभ हो जाता है। डंडा नृत्य में नर्तकों की संख्या बीस से चालीस तक हो सकती है। यह नृत्य गोलाकार होता है और नर्तकों के दोनों या एक हाथ में डंडा हो सकता है। वे आगे और पीछे के नर्तकों के डंडों पर आपस में उसे ठोंकते हैं, जिससे एक विशेष ध्वनि और लय का संचार होता है। इस संचार को ढोलक एवं झांझ-मंजीरे तथा गीत की लय इस नृत्य को सुंदर बनाती है। धीमी गति से प्रारंभ होकर यह नृत्य तीव्रतर होता जाता है। कभी नर्तक बैठकर आपस में डंडे टकराते हैं, तो कभी उचक-उचक कर, इसी को 'डंडे लड़ाना' कहा जाता है। नर्तकों में से एक नर्तक नेतृत्व करते हुए गीत की पंक्ति प्रारंभ करता है, जिसे अन्य उसे दोहराते हैं। जब पोला त्योहार आता है, उस दिन भुमका द्वारा गाड़े हुए डंडे को धार्मिक अनुष्ठान एवं समारोह पूर्वक इस डंडे को उखाड़ते हैं। इसी दिन बालिकाओं के 'डोलार' का भी समापन होता है।

फगुआ गीतः- यह लोकगीत होली जलाते समय कोरकू समाज के लोग होली के पास बैठकर ढ़ोल, टिमकी, खंजरी के साथ ख़ुशी के लोकगीत गाकर जश्न मनाते है और होली जलाने के बाद फाग लोकगीत समूह सबसे पहले गाँव के पुलिस पटेल के घर जाकर फाग गीत गाकर फाग माँगते है, जिसमें कुछ निश्चित राशि उन्हें दी जाती है और ग़ुलाल लगाकर ख़ुशी मनाते है। उसके बाद सारे गाँव के हर घरों में पाँच दिन तक जाकर फाग माँगते हैं।

डोलर गीतः- यह पारंपरिक लोकगीत सावन के महीने में महिलायें व पुरुष सावन अमावस से शुरुआत में जंगल से लकड़ी का झूला और उसकी बाँस की रस्सी से झूला बनाकर रात्रि में युवा महिला और पुरुष झूले पर बैठकर डोलर सावन के गीत गाकर झूला झूलते है। यह परंपरा पोला अमावस्या पर्व तक चलता है और दूसरे दिन झूले की रस्सी का विसर्जन कर देते हैं।

देव दशहरा नृत्य:- यह नृत्य धार्मिक अनुष्ठान से जुड़ा हुआ है। कोरकू जनजाति का यह नृत्य 'देव दशहरा नाच' भी कहलाता है। यह नृत्य 'माघ' माह में होने वाले देव दशहरा पर्व की रात्रि से प्रारंभ होकर अगले दिन तक किया जाता है। कोरकू जनजाति में इस दिन गाँव को बुरी आत्माओं और बाहरी बीमारियों से बचाने के लिए 'गाँव बांधने' की पूजा होती है।

देवदशहरा धार्मिक नृत्य

यह पूजा व धार्मिक अनुष्ठान माघ माह की अमावस्या के बाद भैया दूज के दिन किया जाता है। इस दिन बलि भी दी जाती है। इस पूजा को गाँव का 'भुमका' संपन्न करता है। इस दिन 'गूलर' (*लावा*) नामक वृक्ष के नीचे उसकी पतली शाखा को गाड़ दिया जाता है, इसे 'जाग' कहा जाता है। गाँव का मुखिया नाचते हुए आता है और उस गाड़े हुए शाखा को फरसे से एक ही प्रहार में काटता है।

मृत्यु-गीत:- कोरकुओं में मृत्यु गीत गाने की प्रथा है। कोरकू बूढ़ी महिलाएँ मृतक के तीसरे दिन या दसवें दिन मृत्यु गीत गाती हैं। मृत्यु-गीतों को गाथा गीत, फुलजगनी या सिडोली गीत कहते हैं। गाथा गीतों में मृतक द्वारा किए गए कार्यों का बखान और उसकी प्रिय वस्तुओं को स्मृति चिन्ह के रूप में गाया जाता है। गीतों का स्वर करुणामय होता है। कोरकू दशा गीतों में घरेलू वस्तुओं के प्रतीक कई दार्शनिक अर्थ खोलते हैं।

गोदना कला:- आत्मा की शृंगार 'गोदना' कला जिसे देखकर आप कह सकते है कि आधुनिक जमाने के टैटू इसी पुरातन कला का नया प्रतिरूप है। गोदना की प्रथा अत्यंत प्राचीन है। वस्तुतः शरीर एवं अंग को सुंदर बनाने की भावना के कारण ही गुदना की जाती है। गोदना सौंदर्य वृद्धि का तो एक विशिष्ट साधन माना ही गया है लेकिन इसके साथ ही साथ कई पुरातन मान्यताएँ भी कोरकू जनजाति में प्रचलित है जैसे कुल देवी-देवता, पूर्वजों की आत्मा, गोत्र एवं टोटम आदि में गहरा लोक विश्वास इस गोदना

आत्मा का शृंगार गोदना से प्रयुक्त कोरकू महिला

प्रतीक से जुड़े है। टोटम गोदना एक महत्त्वपूर्ण कला के रूप में जनजाति समुदायों में मौजूद है। टोटम का मतलब पहचान से है। अपनी पहचान बचाने के लिए जनजातियों ने शायद इस कला को अपनाया होगा। टोटम शारीरिक भागों पर गुदवाना हर जनजाति समूह में हम देख सकते हैं। इसमें जंगली प्राणी, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, सगे-संबंधियों का नाम प्रमुख रूप से गुदवाया जाता है। इनका विश्वास है कि मृत्यु के बाद सभी वस्तुएँ इसी लोक में छूट जाती है, किंतु गोदना आत्मा के साथ परलोक तक जाते हैं और इन गोदनों में निहित जादू एवं लोक विश्वास भी आत्मा के साथ जाकर न सिर्फ उनकी रक्षा करते है, बल्कि अलंकरणों के द्वारा उनके सौंदर्य में भी वृद्धि करते है। गोदना शरीर के अलंकरणों के साथ-साथ प्रजनन एवं मंगल के लिए तथा बुरी आत्माओं के कोप दृष्टि से बचने के लिए भी गोदे जाते है और यह भी विश्वास है कि गोदना गुदवाने से कई प्रकार की शारीरिक बीमारियाँ भी दूर हो जाती है और शरीर स्वस्थ रहता है।

नाग देवस्थान संबंधी धार्मिक मान्यता:- मेलघाट क्षेत्र के कोरकू जनजाति के लोगों के साथ घने जंगलों में घूमते हुए साँप के घरौटों मिल जाते हैं, जो साँप का घर हुआ करता था, यह नाम प्रचलन में व्याप्त जनश्रुतियों में है। साँप के घर को कोरकू लोग 'निंदिर कु उरा' या 'निंदिर कु ब्लूम' (दीमक चींटियों का घर) और कोरकू में इसको 'कासा ब्लूम'

नया दीमक का घर (*ओने निंदिर कु ब्लूम*)

पुराना दीमक का घर (*जूना कासा ब्लूम*)

भी कहते हैं। दीमक के घर को विभिन्न जनजतियों में अलग-अलग नामों से संबोधित किया जाता है। जैसे कि हल्बी जनजाति में इसे डेंगूर, गोंड जनजाति में इसे पूत, बस्तर के जनजातियों में भीमभोरा, माँद व अन्य जगहों पर साँप के घर के नाम से जाना जाता है। कोरकू जनजाति के लोगों का मानना है कि इसे एक प्रकार की दीमक चींटी निर्मित

करती है, पर इसमें बिच्छू, चूहे व मुख्य रूप से साँप रहते है। कोरकू लोग दीमक के घर को नाग देवता का देवस्थान भी मानते है और नाग पंचमी के दिन उन्हे दूध पीने के लिए भी चढ़ाते हैं। शोधार्थी का कभी इसकी मिट्टी व औषधि के रूप में उपयोग की तरफ ध्यान नहीं गया। लेकिन मेलघाट के कोरकू जनजाति के करीब आने से पता चल पाया कि इसकी मिट्टी का भी उपयोग किया जाता है। कोरकू जनजाति में इसकी उपयोगिता महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसकी मिट्टी से दैनिक जीवन में उपयोग होने वाले चूल्हे का निर्माण किया जाता है, जो काफी मजबूत होते हैं। इसी तरह मिट्टी के घर को छाबने, कोठी के निर्माण में, पूजा के लिए मिट्टी की मूर्ति बनाने, वही कोरकू लोहार या बढ़ईगीरी करने वाले लोग कोरकू देवी-देवताओं की मूर्ति इसी मिट्टी से तैयार व निर्मित करते हैं। कोरकू लोगों द्वारा मिली जानकारी के अनुसार इस मिट्टी को छानकर पानी में उबालकर शुद्ध कर लिया जाता है और इस तैयार लेप को किसी भी जानवर के काटने से हुए घाव में लगा दिया जाता है, जिससे घाव जल्दी सूखता है। इन सब चीजों के उपयोग के लिए पुराने 'जूना कासा ब्लूम' की मिट्टी ली जाती है। केवल मूर्ति बनाने के लिए नए 'ओने निंदिर कु उरा' की मिट्टी जिसका अभी मुँह नहीं खुला होता है, उस मिट्टी को उपयोग में लिया जाता है। इसे कुंवारी 'निंदिर कु ब्लूम' भी कहा जाता है।

सिडोली प्रथा:- कोरकू समाज में सिडोली प्रथा पारंपरिक रीति-रिवाज़ तीर्थो का एक मोक्ष तीर्थ है, जिसे हर कोरकू इस सिडोली प्रथा में अपने पूर्वजों के नाम से मंडों स्थापित करती है। ऐसा न करने पर उनके घर में बड़ी बीमारी का निवास बन सकता है, किसी न किसी को बीमारी, परेशानी, बाहरी प्रेत आत्माओं का साया व भय बना रहता है, इसीलिए लोग इस प्रथा को अनिवार्य रूप से संपन्न कराते हैं। पूस (पौष) (दिसंबर/जनवरी) महीने या आखातीज (वैशाख) (अप्रैल/मई) महीने में करते हैं और इस प्रथा को करना अनिवार्य है, चूँकि पूर्वजों की आत्मा जिस परंपरा से संतुष्ट हो उन्हें संतुष्ट करने हेतु वही परंपरा करना होता है। नहीं तो इसका परिणाम परिवार के सदस्यों को भुगतना पड़ता है। सिडोली प्रथा कोरकू समाज मे परिवार के सदस्य जो मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, उन पूर्वजों को पत्थर, सागौन या सावड़ी के पेड़ की लकड़ी से मुंडा बनाकर उस पर पूर्वजों की आकृति उकेरकर सभी को स्थापित कर एक कुल में समाहित करने, कुल गोमेज में मिलाने की प्रथा है। मृत आत्मा की शांति के लिए सहपरिवार कुटुंब मिलकर तीसरा दिन, सातवाँ दिन और दसवाँ का प्रावधान प्रचलित है। दसवाँ के दिन सारी कुलगोमज पूजा होने पर आखिर में शाम होने से पहले परिवार के लोग आसपास की नदी में जाकर केकड़ा के गड्ढे या होल में फूल रखकर खाना के साथ दिया जलाकर आत्मा का निवास स्थान केकड़ा में मानकर सिडोली तक इंतजार करते है। पूजा खत्म होने के आखिरी दिन गाँव के बाहर किसी पेड़ के नीचे पूर्वजों को प्रसन्न करने के लिए एक हीं वार में धारदार हथियार से

बकरे की बलि दी जाती है। उसके बाद पूर्वजों को भोग लगा कर सभी को खिचड़ा भोजन परोसा जाता है। यह परंपरा बहुत अनूठी है, जिसमें बहुत हर्ष उल्लास ख़ुशी के साथ मृत पूर्वजों की आत्मा को गोटा, सिपना, सावड़ी पेड़ से निर्मित मुंडा में रहने के लिए स्थान देते है, जिसे गाँव के आखिरी में या खेत में गाड़ देते है। उस कुल गोमेज मुंडा की हर पूजा पर्व उत्सव पर पूजा की जाती है। पूर्वजों की स्मृति में वृद्ध महिलाएँ मृत्यु गीत गाती हैं। फुलजगनी या दसवां के अवसर पर जो गीत गाए जाते हैं, वही गीत सिडोली में गाए जाते हैं। सिडोली दस-पंद्रह साल में किसी संपन्न और विख्यात कोरकू की स्मृति में मनाया जाता है। आड़ा पटेल, चौधरी, पड़ियार या भुमका के मर जाने पर सुविधानुसार सिडोली अवश्य मनाई जाती है। सिडोली में पूर्वजों की पूजा की जाती है और बकरा की बलि देते है। सामूहिक भोज होता है। कलात्मक मंडो बनाकर उसे स्थापित किया जाता है।

निष्कर्ष

मनुष्य जन्म से ही अपने लोक-समाज और संस्कृति से जुड़ा होता है। मनुष्य की पूरी संस्कृति व समाज के सांस्कृतिक विकास का स्रोत वस्तुतः लोक ही है। वह अपनी रीति-रिवाजों, परंपराओं, संस्कारों, विश्वासों, विचारों एवं क्रिया-कलापों को लोक से ही ग्रहण करता है, जिसकी पहचान व्यक्तिगत न होकर सामूहिक माना गया है। देखने में इन सभी का रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, पहनावा-ओढ़ावा, चाल-व्यवहार, नृत्य, गीत, कला-कौशल, भाषा, चिकित्सा पद्धति व देशज ज्ञान आदि में भिन्नता देखने को मिलती है, परंतु यह संस्कृति एक ऐसा सूत्र है, जिसमें ये सभी एक माला में पिरोई हुई मणियों की भाँति दिखाई देते हैं, जिन्हे आज हम लोक-संस्कृति के रूप में जानते हैं। ई. बी. टायलर (1871) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *'प्रिमिटिव कल्चर'* में संस्कृति की एक वैज्ञानिक परिभाषा प्रदान की है। उन्होने संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'संस्कृति या सभ्यता वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, कला, विश्वास, मनोभाव, आदत एवं उन सारे गुणों का समावेश होता है, जिन्हें मानव ने सामाजिक सदस्य होने के चलते प्राप्त किया है और ज्ञान तथा आदत के अंतर्गत स्वास्थ्य से जुड़े ज्ञान एवं आदतों पर भी प्रकाश डाला है।' लोक शब्द अँग्रेजी भाषा के (*Folk*) का ही हिंदी रूपांतरण है, जिसका अब तक कोई स्पष्ट अर्थ या परिभाषा प्रस्तुत नहीं की गई है। विभिन्न मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों ने 'लोक' शब्द का अर्थ अलग-अलग रूप में प्रस्तुत किया है जैसे कि रॉबर्ट रेडफील्ड (1941) ने अपनी पुस्तक *'फोक कल्चर ऑफ युकाटन'* में लोक का अर्थ सरल समाज के रूप में प्रस्तुत किया है, तो वहीं हेराल्ड गार्फिंकल (*1967*) ने अपनी पुस्तक *'स्टडीस इन एथनोंमेथोडोलॉजी'* में लोक का अर्थ जन साधारण के रूप में वर्णित किया है। इस तरह अगर हम देखे तो पाते हैं कि

लोक शब्द का प्रयोग समग्र रूप में सरल, जन-साधारण, ग्रामीण, लोक समाज और जनजातीय समाज आदि को संबोधित करने के लिए किया जाता रहा है।

संदर्भ-सूची

- Ackerknecht, E.H. (1942b). *Primitive Medicine and Culture Pattern*. Bulletin of the History of Medicine, 12: 545-74.
- Bhat, K.H. (1986). *"Concept of Health and Disease among the Pnars of Meghalaya", In Tribal Health.* Edited by Buddhadeb Chaudhury, Pp. 259-72. New Delhi: Inter-India Publications.
- Clements, F.E. (1932). *Primitive Concepts of Disease*. American Archaeology and Ethnology. 32: 185-252. University of California Publications.
- Elwin, V. (1942). *Jungle Medicine, Psycho-Analysis, Auto-Suggestion and Magical Help*. Illustrated Weekly of India, April, 12th.
- Fabrega, H. Jr. (1971b). *Medical Anthropology.* Biennial Review of Anthropology, Pp. 167-229.
- Foster, G. M. & Anderson, B. G. (1983). *Medical Anthropology*. New York: John Wiley & Sons, Inc. (Pg. No.172-181).
- Kausal, S. (2004). *Healing Practices among the Guddi Tribe of Himanchal Pradesh.* Kalla A.K. And P.C. Joshi (Ed.). Tribal Health and Medicine. Concept Publishing Company, New Delhi: 110059. (Pg. No. 301-310).
- Kumari, P.K & Oinam, H. (2004). *Health Care Practices among Tribes of Manipur.* Kalla, A.K. and P.C. Joshi (Ed.). Tribal Health and Medicine. Concept Publishing Company, New Delhi: 110059. (Pg. No. 276-282).

- Polger, S. (1962). *Health and Human Behavior: Areas of Interest Common to the Social and Medical Sciences,* Current Anthropology. 3: 159-205.
- Rivers, W.H.R. (1924). *Medicine, Magic and Religion.* New York: Harcourt, Brace.
- Redfield, Robert (1941). *Folk Cultures of the Yucatan.* Chicago: University Of Chicago Press.
- Rizvi, S.N.H. (1986). *Health Practices of the Jaunsaris: Socio-Cultural Analysis in B. Chaudhuiri* (Ed.) Tribal Health. New Delhi: Inter-India Publications.
- Rao, V.L.N. & Bharathi, K. (2012). *Ethno-Medical Practices Kolams of Adilabad District, Andhra Pradesh.* International Journal of Social Sciences. (Pg.No.1-12) https://www.researchgate.net/publication/262839897
- Singh, A.P. (2004). *Healing Practices among the Tribe of Uttaranchal.* Kalla. A.K. and P.C. Joshi (Ed.). Tribal Health and Medicine. Concept Publishing Company: New Delhi. (Pg. No. 242-246)
- World Health Organization (2008). *Traditional Medicine Fact Sheet No 134.* Available online: http://www.who.int/mediacentre/factsheets/fs134/en

Citation: जायसवाल, महेंद्र कुमार (2023). मेलघाट क्षेत्र की कोरकू लोक-संस्कृति, HindiTech: A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal, 14 (10), 59-69 . URL: https://hinditech.in/melghat-kshetra-ki-korku-lok-sanskriti/